इस्लाम का परिचय

ग़ैरमुस्लिम भाईयों के मध्य इस्लाम के पिरिचय के लिए एक संक्षिप्त पत्रिका, जिसमें आस्था, समाज, इस्लामी आर्थिक प्रबन्धन, मनुष्य के विषय में इस्लामी विचारों व संकल्पनाओं को मुस्लिम एवं ग़ैरमुस्लिम सम्बन्धों से सम्बन्धित क़ुरआन व हदीस की शिक्षाओं को स्पष्ट किया गया है।

लेखक

मौलाना ख़ालिद सैफ़ुल्लाह रहमानी

अनुवादक

क़ाज़ी अलाऊद्दीन

(एम0एम0, आई0 टी0 आई0)

प्रकाशक

अल माहदुल आली अल इस्लामी, हैदराबाद

सर्वाधिकार सुरक्षित

पुस्तक	:	इस्लाम का परिचय
लेखक	:	मौलाना ख़ालिद सैफुल्लाह रहमानी
पृष्ठ	:	37
प्रथम संस्करण	:	शाअबान 1438 हिजरी - मई सन् 2017 ई0
अनुवादक	:	क़ाज़ी अलाऊद्दीन, दिल्ली
प्रकाशक	:	अल माअहदलु आली अल इस्लामी, हैदराबाद

मिलने का पताः

☆ अल माअहदुल आली अल इस्लामी, शाहीन नगर, हैदराबाद

☆ हुदा बुक डिस्ट्रीब्यूटर्स, पुरानी हवेली, हैदराबाद

☆ दक्कन ट्रेडर्स, मुगलपुरा, चारमिनार, हैदराबाद

☆ क़ुतुब ख़ाना नईमिया, देवबन्द, सहारनपूर, पू0पी0

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

विषय-सूचि

प्रारंभिकः लेख	7
ख़ुदा एक है!	10
रसूल और किताब	12
मुहम्मद रसूल सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम	14
आख़िरत	21
मनुष्य के विषय में!	23
ग़ैरमुस्लिम भाईयों के सम्बन्ध में	25
महिलाएं और इस्लाम	28
धार्मिक कार्य और उनका उद्देश्य	30
समाज की इस्लामी कल्पना	32
आर्थिक विषय में इस्लामी कल्पना	33
पशुओं के साथ दयालुता	35
धर्म (दीन) में कोई दबाव नहीं	36

☆☆☆

प्रारम्भिक

दिनांक 23-24 सितम्बर सन् 2016 ई0 को मगध यूनिवर्सिटी, बोद्ध गया (बिहार) में इन्सटीट्यूट ऑफ आब्जेक्टिव स्टडीज देहली के सहयोग से एक संगोष्ठी का आयोजन हुआ। जिसमें हिन्दू, आर्यसमाजी, जैन, बौद्ध, ईसाई और चीनी धर्मों के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए और उन्होंने अपने -अपने धर्मों का परिचय कराने के साथ-साथ धर्मों में मानव मान सम्मान से सम्बन्धित अलग-अलग बातें प्रस्तुत की, और अन्य धर्मों के परस्पर आपसी सहयोग एवं मेलजोल की आवश्यकता व महत्ता को स्पष्ट किया।

इन्सटीट्यूट के सभापति जनाब डॉ0 मंज़ूर आलम साहब ने इस्लाम का परिचय बहुत ही संक्षिप्त भाषा में प्रस्तुत किया है। इसी प्रस्तुति के आधार पर इस लेख को पूरा किया गया है। इसमें पाँच बातों को ध्यान में रखा गया है।

(1) संक्षिप्त वार्तालाप, सरल और स्पष्ट हो।

(2) प्रत्येक बात क़ुरआन एवं हदीस और रसूले नबी की रोशनी में कही जाये और उनके प्रमाणों का भी वर्णन किया जाये।

(3) अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करते समय अन्य धर्मों की टिप्पणी न हो।

(4) परिचय से सम्बन्धित सकारात्मक दशा पर उन समस्याओं को भी

स्पष्ट किया जाना चाहिए जिनके विषय में देशवासियों के मध्य गलत फहमियां पाई जाती हैं।

(5) अपनी बात प्रस्तुत करने में आवश्यकतानुसार बौद्धिक स्तर से भी सन्तुष्ट करने की कोशिश की जाये।

ईश्वर करे कि यह संक्षिप्त पत्रिका देशवासियों को इस्लाम से परिचय कराने में सहायक साबित हो। अगर ईश्वर की सहायता से ऐसा हुआ तो डॉ0 साहब इसके कृपा पात्र एवं ईश्वर की कृपाशीलता के बराबर के भागीदार होंगे, ईश्वर हम सबसे राज़ी हो जाये और हमारी छोटी-मोटी प्रयासों को स्वीकार कर ले।

खालिद सैफुल्लाह रहमानी

बैतुल माअ़हद, क़ुबा कालोनी, शाहीन नगर

हैदराबाद - तिलंगाना

2 मुहर्रम 1438 हिजरी

4 अक्टूबर सन् 2016 ई0

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

मुसलमान जिस धर्म पर विश्वास रखते हैं, उसके दो नाम हैंः इस्लाम और ईमान, इसी लिहाज़ से मुसलमानों के भी दो नाम हैंः मुस्लिम और मोमिन, इस्लाम का अर्थ अपने आपको सम्पर्ण कर देने के हैं, वह अरबी व्याकरण के अनुसार सलीम और सलाम से सम्बंधित है जिसका अर्थ , सुलह, सलामती, शान्ति और सम्पर्ण के हैं, इसी से मुस्लिम है अर्थात् ऐसा व्यक्ति जो सुलह (समझौता) को पसन्द करने वाला और अपने आपको ईश्वर को समर्पित कर देने वाला हो, ईमान ''अमन'' शब्द से सम्बन्धित है, अमन का अर्थ है दुसरों को अमन देना, शान्ति देना, यक़ीन करना, इसी से मोमिन है, मोमिन का अर्थ हुआ, अमन देने वाला, शान्ति देने वाला, यक़ीन करने वाला।

विचार कीजिए तो इस्लाम और ईमान इन दोनों में अमन, सलामती, सुलह और ईश्वर की आज्ञा के सामने झुक जाने के अर्थ में पाये जाते हैं। अर्थात् इस्लाम की सम्पूर्ण शिक्षा का सार यही है। पवित्र ग्रन्थ क़ुरआन हमें यह बताता है कि इस्लाम की शुरूआत पहले संदेष्टा हज़रत आदम अलैहिस्सलाम से हुई, प्रथम मानव, पहले मुसलमान भी थे, इतिहास के विभिन्न कालों में जितने पैग़म्बर (ईशदूत) गुजरे हैं, वह सब अपने-अपने समय में इस्लाम की दावत देने वाले थे, और जिन लोगों ने इनकी दावत क़ुबूल की वह सब मुसलमान थे क्योंकि मुसलमानों में वह सब लोग शामिल हैं जो ईश्वर की आज्ञा के सामने सर झुका दें। ऐसा

नहीं है कि इस्लाम की शुरूआत मुहम्मद सल्ल0 से हुई है। इसीलिए मुहम्मद सल्ल0 ने मुसलमानों के लिए अपने नाम के सम्बन्ध से कोई नाम नियुक्ति नहीं किया और अपने मानने वालों को ''मुहम्मदी'' या ''मोमडन'' नहीं कहा, बल्कि उन्हें ''मुस्लिम'' और ''मोमिन'' का नाम दिया गया, जिनको हिन्दुस्तान में साधारण से मुसलमान कहा जाता है।

ईश्वर एक हैः

हम जिस ब्रहमाण्ड में रहते हैं इसके हमने पैदा नहीं किया है, बल्कि हमने स्वयं अपने आपको भी नहीं बनाया है, कोई शक्ति है जिसे इस ब्रहमाण्ड को भी पैदा किया है और हमें भी, फिर विचार कीजिए, तो इस संसार में समस्त वस्तुए एक सन्तुलन के साथ पायी जाती हैं, मनुष्य के आक्सीजन की आवश्यकता है, प्रदुषित गैस इन्सान के लिए हानिकारक हैं, मगर यही गैस पेड़ पौधों की खुराक हैं। वह इन गैसों को शुद्ध करके मनुष्य के लिए आक्सीजन प्रदान करती हैं, हर स्थान की आवश्यकता के अनुसार से वर्षो होती है, रेगिस्तानों में वर्षा कम होती है जंगलों में अधिक मात्रा में वर्षा होती है क्योंकि जीव जन्तुओं को पानी की ज्यादा आवश्यकता होती है। एक निश्चित समय के अनुसार ही दिन व रात का आवागमन होता है। ब्रहमाण्ड की ऊंचाईयों में अरबों की संख्या में सितारे बिना रूके गतिमान हैं। लेकिन तीव्र गति के बावजूद इनके मध्य टकराव नहीं होता। सूर्य इनती अधिक मात्रा में उष्मा निकालता है कि वह ज्यों का त्यों पृथ्वी पर पहुॅच जाये तो पृथ्वी जल कर भस्म हो जाये, क्योंकि एक सेकेन्ड में सूर्य जो ताप (ऊष्मा) निकालता है उसकी मात्रा दस लाख एटम बम से अधिक है। पृथ्वी के चारों तरफ हवा का ऐसा गिलाफ

(चादर) तान दिया गया है कि वह अत्याधिक गतिशीलता को अपने अन्दर व्याप्त कर लेता है और मनुष्य की आवश्यकतानुसार और सहनशीलता के अनुसार ज़मीन पर पहुँचा देता है अर्थात समस्त ब्रहमाण्ड एक सन्तुलित गतिशीलता समान्य प्रबन्धन के साथ क्रियाशील है।

इसमें मालूम होता है कि कोई सर्वमान्य शक्ति है जिसने ब्रहमाण्ड को पैदा किया और वह लगातार इसका प्रबन्धन भी कर रही है, इसी शक्ति का नाम खुदा (ईश्वर,`वक) है और वह 'एक' ही है, अगर कई लोग मील कर ब्रहमाण्ड का प्रबन्धन चलाते, तो वह टकराव से बच नहीं पाते और ब्रहमाण्ड के प्रबन्धन में इस समय जो एकसमानता है वह स्थिर नहीं रह पाती, अर्थात पवित्र क़ुरआन ने ख़ुदा के अस्तित्व का परिचय कराते हुए कहा हैः

> ईश्वर के सिवा कोई पुज्यनीय लायक नहीं, वह जिन्दा है, सबको थामें हुए है, न उसको ऊंघ आती है और न नींद, आसमानों में ज़मीनों में जो कुछ है, सब उसी का है कौन है जो उसके सामने उसकी आज्ञा के बग़ैर सिफारिश कर सके? जो कुछ लोगों के सामने है और जो कुछ लोगों से ओझल है, उसको सबका ज्ञान है, उसके ज्ञान के किसी स्थान पर भी कोई व्यक्ति हावी नहीं हो सकता, सिवाए उसके कि स्वयं वहीं (किसी को कोई ज्ञान देना) चाहे, आसमानों की और ज़मीनों की बादशाही उसी के लिए है इनकी संरक्षता (निगेहबानी) उसके लिए थकावट देने वाला काम नहीं, वही सबसे ऊपर है और वही सबसे बडा है। (अल बक़राः 255)

इस्लाम में ईश्वर के एक होने का मतलब यह है कि उसकी जात भी एक है और वह अपने गुणों में भी एकता है। वही पैदा करता है, वही मौत देता है, मनुष्य उसी के आज्ञा से बीमार पड़ता है और उसी के आदेश से निरोग, स्वस्थ्य होता है, वही रोज़ी देने वाला है, उसी के आदेश से किसी की जीविका बढ़ती है और किसी की कम होती है, यह विचार मनुष्य को एक पवित्रता प्रदान करता है, वह समझता है कि इसकी पेशानी (माथा) केवल ईश्वर के सामने झुकने के लिए है वह जीव प्राणियों के डर के वहम से स्वतनत्र हो जाता है फिर यह विश्वास इसके अन्दर ब्रहमाण्ड के विषय में खोज की भावना उत्पन्न करता है। क्योंकि वह समझता है कि ईश्वर ने यह समस्त वस्तुए उसकी सेवा के लिए पैदा की हैं। जब व्यक्ति किसी वस्तु को अपना सेवक समझता है तो उसके विषय में खोज़ इच्छा एवं लालसा से कोई झिझक नहीं होती, और अगर वह किसी वस्तु को अपना पूज्यनीय समझ ले, तो समय का तक़ाज़ा (आवश्यकता) होता है कि वह उसकी ख़ोज़ में न पड़े।

रसूल और किताबः

जो किसी वस्तु को बनाने वाला होता है, वही उसके प्रयोग के नियमों और उसके लाभ एवं हानि की दशाओं से भी परिचित होता है, जब ईश्वर ने इस ब्रहमाण्ड को भी बनाया है और मनुष्य को भी, तो संसार की वस्तुओं को उसे किस तरह प्रयोग करना चाहिए और स्वयं अपने जीवन को किस तरह व्यतीत करनी चाहिए? इसके लिए उसे ईश्वर के मार्ग दर्शन की आवश्यकता है। अर्थात् ईश्वर ने मनुष्य के मार्गदर्शन के लिए वह प्रबन्धन प्रस्तुत किया, एक यह कि प्रत्येक काल में प्रत्येक क़ौम

में अपना सन्देष्टा (ईशदूत) भेजा, दूसरा ईशदूतों के पास अपनी पुस्तक भेजी, और ईशदूतों को ज़िम्मेदारी दी गयी कि वह ईश्वर के बन्दों तक ईश्वर कि किताब पहुँचाए, मनुष्य को समझायें और स्वयं ईश्वर के आदेशों का निर्वाह करके लोगों के सामने व्यवहारिक आदर्श प्रस्तुत करें। क्योंकि कोई आदेश जब व्यवहार के सांचे में ढल जाता है तो लोगों के लिए उसका समझना सरल हो जाता है। अर्थात् हर क़ौम में उन्हीं की भाषा का बोलने वाला ईशदूत भेजा गया और उसी भाषा में ईश्वर की किताब अवतरित की गयी, अर्थात पवित्र पुस्तक क़ुरआन कहता हैः

> और हमने हर क़ौम में उन्हीं की भाषा का रसूल भेजा
> (इब्राहिमः 4)

यह ईशदूत इन्सान ही हुआ करते थे, इनको ईश्वर की तरह पैदा करने, मारने, रोज़ी (जीविकोपार्जन) देने, रोगों से वंचित करने, बीमार करने और स्वास्थ्य निरोग करने का अधिकार नहीं था वह भी अपने आवश्यकताओं के लिए ईश्वर ही के सामने हाथ फैलाते थे, यद्यपि उनको यह बुज़ुर्गी (बढाई) और महानता प्राप्त थी कि इन पर ईश्वर का कथन (वाणी) अवतरित होता था और ईश्वर ने अपना संदेश पहुँचाने के लिए इनको नियुक्ति कर लिया था। अर्थात मुहम्मद (सल्ल0) से पवित्र क़ुरआन ने कहलाया हैः

> मैं भी तुम्हारी तरह एक इन्सान हूं - अलबत्ता मेरे ऊपर
> ईश्वर का कथन उतारा जाता है। (अल कहफः 110)

एक और अवसर पर फरमाया गया कि रसूल, ईश्वर के आदेश के बग़ैर कोई निशानी नहीं ला सकता।

ईशदूतों के विषय में यह बात फरमायी गयी कि उनका

काम सिर्फ ईश्वर के संदेश को अच्छी तरह पहुँचा देना है। (अल रअदः 38)

अर्थात् चूंकि रसूल ईश्वर के ईशदूत होते हैं और मनुष्य को बताते हैं कि किन बातों से ब्रहमाण्ड का मालिक प्रसन्न होता है और किन बातों से नाराज़ होता है। इस लिए मनुष्य पर यह बात आवश्यक हो जाती है कि वह ईशदूतों का अनुशरण एवं पालन करे।

हमने किसी भी ईशदूत को इसी लिए भेजा कि ईश्वर के आदेश से इसका अनुसरण करे। (अल निसाः 64)

मुहम्मद रसूलुल्लाह सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लमः

ईशदूतों का यह सिलसिला मुहम्मद रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम पर पूर्ण हो गया, अब आप (सल्ल0) के बाद कोई ईशदूत (संदेष्टा) नहीं आ सकता, क़ुरआन ने इस बात को शर्तों के साथ कहा है। अर्थात् इन्सान के मार्गदर्शन के लिए ईश्वर की तरफ से दो विशेष प्रबन्ध किया गया। एक यह कि आप (सल्ल0) पर अवतरित होने वाली किताब पवित्र क़ुरआन पूर्णरूप से सुरक्षित कर दी गयी, पवित्र क़ुरआन में (6666) आयतें हैं जो विशेषरूप से (320015) शब्दों पर आधारित हैं, इनमें आप (सल्ल0) के काल से लेकर आज तक कहीं एक भी शब्द का परिवर्तन नहीं आया, प्रत्येक वर्ष सिर्फ हिन्दुस्तान में पवित्र क़ुरआन के एक करोड़ से अधिक प्रति छपते हैं। दूसरे देशों में छपने वाली क़ुरआन की प्रतिर्या इसके अलावा हैं। कोई मुसलमान ऐसा नहीं जिसके घर में यह किताब मौजूद न हो और यह पुस्तक प्रत्येक समय प्रत्येक व्यक्ति के लिए पहले भी उपलब्ध थी और भी उपलब्ध है, इन प्रतियों में कहीं एक शब्द या

बिन्दु और ज़ेर ज़बर मात्रा का भी अन्तर नहीं पाया जाता। दूसरे मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के वचनों और आप (सल्ल0) की ज़िन्दगी के हालात को इस तरह सुरक्षित कर दिया गया है कि इन्सान बचपन से लेकर बुढापे तक और सुबह से लेकर रात तक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रत्येक समय के लिए आप (सल्ल0) के जीवन से रोशनी प्राप्त कर सकता है, दस हज़ार से अधिक प्रमाणित हदीसें हैं, जो हमें आप (सल्ल0) की शिक्षाओं से परिचित कराती हैं, इस लिए अगरचे ईशदूतों के आने का सिलसिला बाक़ी नहीं रहा, लेकिन मनुष्य इन सोत्रों से अपने जीवन के विषय में ईश्वर की इच्छा को सरलता से जान सकता हैं।

मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम सन् 570 ई0 में पैदा हुए, इनकी पैदाईश से पहले ही इनके पिता का देहान्त हो चुका था, 6 वर्ष तक अपनी माता और माता के देहान्त के बाद 9 वर्ष तक दादा की देखभाल में रहे, फिर आप (सल्ल0) के चचा ने बहुत ही स्नेह और प्रेम के साथ आप (सल्ल0) का पालन पोषण किया, इस अनाथ जीवन ने आप (सल्ल0) के अन्दर अनाथों और कमज़ोरों के बारे में प्रेम और दयालुता की भावना दिल में भर दी, आप की सच्चाई और ईमानदारी का इतनी प्रसिद्ध थी, कि लोग आपको सादिक़ (सच्चा) और अमीन (अमानतदार) कह कर पुकारते थे, आपके अन्दर स्वभाविक रूप से बड़ी हिकमत दूरदर्शिता व व्यापकता भी पाई जाती थी, नबी बनाए जाने से पहले काबा की टूटी हुई इमारत को दोबारा निर्माण करने के समय में दो विभिन्न क़बीलों के मध्य मतभेद पैदा हो गया और सम्भावना ऐसी पैदा हो गई कि ऐसी लड़ाई छिड़ जायेगी कि ख़ून की नदियां बहने लगेंगी। लेकिन सब लोगों ने आपके आदेश को मान लिया और आपने ऐसा खूबसूरत फ़ैसला किया कि

सारे लोगों ने हंसी ख़ुशी स्वीकार कर लिया।

जब आप (सल्ल0) की आयु 40 वर्ष की हुई तो आप (सल्ल0) पर ईश्वर का कलाम (कथन) अवतरित होना शुरू हुआ, इस अचानक पेश होने वाली घटना से आप घबरा गये, आप तुरन्त अपनी पत्नी हज़रत ख़दीज़ा रज़ि0 के पास आये और अपनी घबराहट को व्यक्त किया उस समय आप (सल्ल0) की पत्नी ने और स्पष्ट है कि पत्नी सबसे अधिक पति के हालात से अवगत होती है। कहा ईश्वर की कसम! अल्लाह हरगिज़ आप को रुसवा नहीं करेगा। क्योंकि आप रिश्तेदारों के साथ अच्छा व्यवहार करते हैं, लोगों का बोझ उठाते हैं, अनाथों की देश-भाल करते हैं, मेहमानों की मेहमाननवाजी करते हैं और किसी अच्छे काम की वजह से इन्सान मुसीबत में पड़ जाये, तो उसकी मदद करते हैं। (बुख़ारी शरीफ हदीस न0ः 3)

फिर जब ईश्वर की तरफ से आदेश हुआ कि आप (सल्ल0) अपने ईशदूत होने की घोषणा कर दें, तो मक्का के प्राचीन नियमों के अनुसार आप (सल्ल0) ने सफ़ा की पहाड़ी से आवाज़ लगाई, लोग एकत्र हो गये, आपने अपनी बात पेश करने से पहले लोगों के सामने अपनी जात को पेश किया, आप (सल्ल0) ने फ़रमाया कि मैंने तुम्हारे मध्य 40 वर्ष व्यतीत किया है, तुमने मुझे सच्चा पाया या झूठा? समस्त लोगों ने एक स्वर होकर कहा ''सच्चा'', फिर आप ने सवाल किया कि तुम ने मुझे अमानतदार पाया या ख़्यानत करने वाला? समस्त लोगों के ज़ुबान पर था अमानतदार, आप (सल्ल0) ने और आगे पूछाः अगर मैं कहूं कि इस पहाड़ी के पीछे एक फ़ौज है, तो क्या तुम इसका विश्वास करोगे? लोगों ने कहाः वास्तव में ऐसे हालात नहीं हैं कि कोई गिरोह हम पर हमला

करे, लेकिन हमने कभी आपको झूठ बोलते हुए या बददियानती करते हुए नहीं देखा, इस लिए कोई कारण नहीं कि आप कहें और हम उसका विश्वास न करें, अब आप (सल्ल0) ने फ़रमायाः

तुम गवाही दो कि ईश्वर के सिवा कोई इबादत के लायक नहीं और मैं ईश्वर का बन्दा और उसका पैग़म्बर (ईशदूत) हूं। इससे अनुमान किया जा सकता है कि आप (सल्ल0) आचरण के किस उच्च स्तर पर थे कि जिन लोगों के मध्य आप ने बचपन से लेकर जवानी तक का पूरा समय गुजारा, उन से आपको अपने बारे में जानने में कोई डर नहीं हुआ, इसी लिए जिन लोगों ने आपकी दावत को स्वीकार नहीं किया, वह भी इसबात का साहस नहीं कर सके कि आपके आचरण व व्यवहार पर उंगली उठाए।

मुहम्मद (सल्ल0) के जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू दयालुता और शान्ति व समझौता को अपनाना है, आप (सल्ल0) ने फरमायाः रहम करने वालों ही पर ईश्वर मेहरबान भी रहम करता है (बुख़ारी, हदीस न0ः 73) तुम ज़मीन वालों पर रहम करो तो आसमान वाला तुम पर रहम करेगा। (तिर्मज़ी हदीस न0ः 1924)

जो लोग कमज़ोर और बेसहारा होने की वजह से विशेष मदद के हक़दार होते हैं उनके साथ आप (सल्ल0) ने विशेषरूप से अच्छे व्यवहार करने का आदेश दिया, आप (सल्ल0) ने फरमायाः कि जो व्यक्ति अनाथ की मुहब्बत के साथ परवरिश करे, वह स्वर्ग (जन्नत) में मेरे बहुत निकट रहेगा, आप (सल्ल0) ने अपनी दो उंगलियों का इशारा करते हुए फरमायाः जैसे यह दो उंगलियां। (अबु दाऊद हदीस न0ः 5152, मुसनद अहमद हदीस न0 2282)

आप (सल्ल0) ने बूढ़ों के साथ नम्रता और बच्चों के साथ स्नेह करने का आदेश दिया और फरमाया कि जो ऐसा न करे, वह हमारा आदमी नहीं। (तिर्मिज़ी, हदीस नः 1919)

स्त्रियों के साथ विशेषरूप से अच्छे आचरण एवं क्षमाशीलता का व्यवहार करने का आदेश दिया।

एक बार आप (सल्ल0) ने कमज़ोर और परेशान हाल लोगों की मदद की महत्ता को बताते हुए फरमायाः क़यामत के दिन ईश्वर कुछ लोगों से पूछेगा मैं बीमार था, तुमने हाल चाल नहीं पूछा, मैं भूखा था तुमने खाना नहीं खिलाया, मेरे कपड़े नहीं थे, तुमने मुझे लिबास नहीं पहनाया, बन्दा पूछेगाः ऐ ईश्वर! क्या आप बीमार पढ़ सकते हैं और मैं आप की अयादत (कुशलक्षेम) कर सकता हूं? क्या मैं आपको खाना खिला सकता हूं? क्या मैं आपको कपड़े पहना सकता हूं? तो ईश्वर कहेगा कि अगर तू फलां बीमार के पास पहुँचता तो मुझे वहां मौजूद पाता, अगर तू फलां भूखे के पास पहूंचता तो मुझे वहां मौजूद पाता, अगर तू फलां नंगे के पास जाता, तो मुझे वहां मौजूद पाता। (मुतस्लम, उन अबी हुरैरा, हदीस न0 2569)

आप (सल्ल0) की कृपाशीलता दयालुता का हाल यह था कि मक्का में 13 वर्ष आप (सल्ल0) ने और आप पर इमान लाने वालों ने बहुत ही परेशानी एवं कष्टों में दिन गुजारे, मुसलमानों को तरह तरह की तकलीफ़ें दी गयीं, कुछ लोगों को रेत पर घसीटा गया, कुछ लोगों को आग के अंगारे पर लिटाया गया, कुछ मर्दों और औरतों को घर की दहलीज पर कांटे डाले जाते, घर के अंदर कचरा फेंक दिया जाता, गले में ऊंट की ओंझ का फंदा डालकर मारने की कोशिश की गयी, क़त्ल की

योजना बनाई गयी, लेकिन आप (सल्ल0) ने इस पूरे काल में न कभी हाथ उठाया न अपने साथियों को इसकी आज्ञा दी, फिर आप अपने साथियों के साथ खाली हाथ मदीना चले गये, मदीना के ज्यादातर लोगों ने आप की दावत स्वीकार कर ली और आपके साथ बहुत अच्छा आचरण किया, आप चाहते थे कि अब सरलता एवं समानता के साथ लोगों तक इस्लाम का संदेश पहुँचाया जाये, लेकिन मक्का के निवासियों को यह भी गवारा न हुआ, उन्होंने मुसलमानों की इस छोटी सी बस्ती पर अगले ही वर्ष हमला कर दिया और बद्र के मैदान में जो मदीना से 80 मील पर स्थिति है, जंग की नौबत आ गई, ईश्वर की ऐसी मदद हुई कि दुश्मनों के बड़े-बड़ 70 सरदार मारे गये और 70 क़ैद हुए, आप ने क़ैदियों के साथ बड़ा अच्छा आचरण किया, यहां तक कि रिहा करते हुए उन्हें नये जोड़े पहना कर विदा किया, अलगे ही वर्ष दोबारह मक्का वालों ने मुसलमानों पर हमला कर दिया और यह लड़ाई बिल्कुल मदीना की सीमा पर लड़ी गई, बहुत से मुसलमान शहीद हुए, लेकिन इस हाल में भी आप हमला करने वालों के लिए दुआ ही करते रहे, दो वर्ष के बाद फिर मक्का वालों ने विभिन्न क़बीलों को अपना संगठन बनाकर मुसलमानों पर हमला किया, यह इतनी बड़ी जंग और जंगी संसाधनों से माला माल फ़ौज थी कि मदीना की ईंट से ईंट बज जाती, आप (सल्ल0) ने ऐसी जंगी रणनीति का अनुसरण किया कि अन्ताः दुश्मनों को वापिस हो जाना पड़ा। यह घटना मदीना आने के पाँच वर्ष का था, इस ताबड़तोड़ हमले के बावजूद अगले वर्ष आप (सल्ल0) मुसलमानों के साथ एहराम का लिबास पहनकर मक्का के लिए निकले, जो शान्ति और इबादत की भावना का अंश समझा जाता था और अरबों की परम्परा के अनुसार एहराम बांध कर आने वाले किसी

व्यक्ति को क़ाबा का तवाफ़ करने से रोका नहीं जाता था, लेकिन फिर भी मक्का वालों ने आज्ञा नहीं दी और अन्त में आप ने लड़ाई से बचते हुए मक्के के निवासियों की शर्तों पर सुलह कर ली और वापिस हो गये, मक्का के निवासियों ने इस समझौते का भी लिहाज नहीं रखा और मुसलमानों के सहयोगी क़बीले को जो ग़ैर मुस्लिम ही था, मक्का में दौड़ा दौड़ा कर क़त्ल किया, फिर भी आप (सल्ल0) ने लड़ाई से बचने के लिए उनसे कहा कि वह इनका ख़ून बहा अदा कर दें, मगर उन्होंने इसे भी स्वीकार नहीं किया और कहा कि हमें जंग करनी है, अर्थात जिस क़बीले पर ज़ुल्म किया गया था, उसकी प्रार्थना पर मजबूर होकर मक्का से हिजरत (पलायन) के आठवें वर्ष आपने अपने दस हज़ार साथियों को लेकर फिर मक्का रवाना हुए और ऐसी रणनीति अपनाई की जंग की नौबत न आई। अर्थात मक्का वालों ने बग़ैर किसी लड़ाई के हथियार डाल दिया, उस समय वह समस्त दुश्मन आपके सामने खड़े हुए थे, जिन्होंने आप पर पत्थर फेंका था, आप (सल्ल0) की बेटी को तलाक़ दिलवाई थी, हत्या की योजना बनाई थी, मुसलमानों को असहनीय पीड़ा एवं कष्ट पहुंचाई थी, मक्का छोड़ देने के बावजूद मदीना पर बार बार हमला किया था, लेकिन आप ने न सिर्फ यह कि उनके विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की, बल्कि उनको उनके अपराध की याद दिलाकर शर्मिन्दा भी नहीं किया, आप (सल्ल0) ने उनसे फरमायाः

आज तुम सब आज़ाद हो तुम पर कोई पकड़ नहीं।

(नसई फि सुनन अल कुबरा हदीस न0ः 1827)

शान्ति समझौता एवं सौहार्द स्थापित रखने के लिए आप (सल्ल0) ने हमेशा इसी बात की शिक्षा दी कि कोई मुसलमान दुसरों के लिए कष्ट

एवं पीडा का कारण न बने, आप से पूछा गया कि सबसे श्रेष्ठ मुसलमान कौन है? आप (सल्ल0) ने फरमायाः

वह व्यक्ति कि जिसकी ज़ुबान और जिसके हाथ से दुसरे लोग सुरक्षित रहें। (अल एहसान फीत्तक़रीब हदीस न0ः 4862)

एक और अवसर पर आपने फरमाया कि सबसे अच्छा मुसलमान वह है कि जिसके संरक्षण से लोग शान्ति से रहं, ज्यादातर पडोसियों के मध्य लडाई झगडे की नौबत आती है, इस लिए आप (सल्ल0) ने इरशाद फरमाया।

जो ईश्वर पर ईमान रखता है, वह पडोसी को न सताए।

(सही बुख़ारी, हदीस न0ः 5185)

एक और अवसर पर आप (सल्ल0) ने फरमायाः

जिसका ईश्वर पर ईमान हो उसे चाहिए कि अपने पडोसी का सम्मान करे। (बुख़ारी, हदीस न0 6019)

आश्य यह है कि आप (सल्ल0) का सम्पूर्ण जीवन का उद्देश्य से जोडना, लोगों को शान्ति एवं सौहार्द की तरफ बुलाना शर्म व हया की दावत देना और आचरण में सुधार करना था।

आखिरत (प्रलोक)

इस्लाम का आधारमूत मान्यता आखिरत का विश्वास है, अर्थात इस बात का विश्वास कि एक ऐसा समय आएगा, जब ईश्वर के आदेश से यह कायनात समाप्त कर दी जायेगी, समस्त मनुष्य जिन्दा किये जायेंगे, उन्होंने दुनिया में जो अच्छे काम किये थे, उनको उसका बेहतर ईनाम दिया जायेगा, वह जन्नत में दाखिल किये जायेंगे, और जो मनुष्य ने

पाप किये थे उन्हें उसका कठोर दण्ड मिलेगा और वह दोजख (नरक)↕में डाल जायेंगे।

वास्तविकता यह है कि आख़िरत का विश्वास वृद्धि व प्राकृति के अनुसार है, दुनिया में इंसान बहुत से अच्छे काम करता है, लेकिन उसको इसकी वापिसी नहीं मिलती बल्कि कुछ दफा वह दुख भरी ज़िन्दगी गुज़ार कर दुनिया से चला जाता है, इसके विपरित कुछ लोग ज़ुल्म व .ज्यादती करते हैं, लेकिन दुनिया में उनको सज़ा नहीं मिल पाती है, इस लिए बुद्धि की मांग है कि कोई ऐसी जगह होनी चाहिए जहां नेकी करने वालों को ईनाम और पाप करने वालों को सज़ा मिले, इसी का नाम आख़िरत है, वहां ख़ानदान, रंग व नस्ल और क्षेत्र व भाषा के कारण से नहीं, बल्कि इन्सान के आचरण और कर्म के कारण से इनाम और दण्ड का फैसला होगा।

आख़िरत का विश्वास एक क्रान्तिकारी अक़ीदा (आस्था) है, इसकी वजह से मनुष्य की सोच बदल जाती है, मनुष्य उस समय भी नेकी के काम करने पर अग्रसर होता है, जब कोई तारीफ करने वाला और इनाम देने वाला न हो और उस समय भी बुराई और अत्याचार से दूर रहता है, जब कोई देखने वाली आँख और टोकने वाली जबान नहीं हो, उदाहरण के तौर पर इस में कोई विरोध नहीं कि शराब इन्सान के स्वास्थ्य के लिए भी हानिकारक है और आचरण के लिए भी, लेकिन अमेरिका जैसे देश में समस्त प्रशिक्षण, निवारण और क़ानूनी संसाधनों के प्रयोग के बावजूद यह बात संभव न हो सकी कि लोगों को शराब से रोक दिया जाये, स्वयं हमारे देश में कई राज्यों में शराब बन्दी की कोशिश की गयी और इसके लिए कठोर से कठोर क़ानून बनाये गये, लेकिन फिर भी सम्पूर्ण

रूप से शराब की पीने से रोकना संभव न हो सका, अरब के लोग शराब पीने के बहुत बड़े शैक़ीन थे, उनकी कोई भी महफिल शराब से खाली नहीं होती थी, लेकिन पैग़म्बर इस्लाम (सल्ल0) ने पहले लोगों के मस्तिष्क में आख़िरत का विश्वास पैदा किया, फिर जब शराब के हराम होने की घोषणा हुई तो जिन के होंठों तक शराब पहुच चुकी थी, उन्होंने उसको हलक़ तक नहीं पहुँचाया, शराब के मटके तोड़ दिये और मदीने की गलियों में शराब बहने लगी।

इसी तरह सूदी कारोबार अरबों में आम था, वह इसे एक व्यापार समझते थे, लेकिन जब इस्लाम ने इसको मना किया, क्योंकि इसमें ग़रीबों का शोषण होता था, तो लोगों ने इस आदेश को स्वीकार कर लिया और जो सूद पहले से लोगों के ज़िम्मे बाक़ी थे, उस से भी किनारा कर लिया और ब्याज लेने से रूक गये। यह इसी अक़ीदे का परिणाम था, यक अक़ीदा (विश्वास) मनुष्य के विचार को बदलता है, इससे मानव में यह सोच पैदा होती है कि हर काम को भौतिक लाभ व हानि के तराजू में न तौला जाये। बल्कि वह बहुत से कामों को ईश्वर की प्रसन्नता और ईश्वर की भलाई के लिए करे।

मनुष्य के विषय में:

मनुष्य के विषय में इस्लाम ने दो आधारभूत संकल्पनाए प्रस्तुत किये हैं, एक यह कि समस्त मानव एक ही मां बाप की संतान हैं, ऐसा नहीं है कि पैदाईशी तौर पर इनमें कोई बड़ा और कोई छोटा हो, अर्थात पवित्र क़ुरआन ने काहः

ऐ लोगों! अपने रब से डरो, जिसने तुम सबको एक जान

से पैदा किया है, उसी से इनका जोड़ा बनाया है और इन दोनों से बहुत से पुरुष स्त्री बना दिये हैं। (अल निसाः 1)

स्वयं मुहम्मद (सल्ल0) ने अपनी समस्त शिक्षाओं का निचोड़ प्रस्तुत करते हुए फरमायाः

तुम्हारा ईश्वर भी एक है और तुम सब एक ही मां बाप की सन्तान हो। (मुस्नद अहमद, हदीस न0ः 23489)

यानी ईश्वर की तौहीद (एकतत्त्व) और इंसानी वहदत। इस सम्बन्ध में इस्लाम के ईशदूत मुहम्मद (सल्ल0) ने एक क्रान्तिकारी संकल्पना प्रदान की, कि जो बातें इत्तेफाक़ी तौर पर पेश आती हैं इसके अपने इरादे व कर्म का दखल नहीं होता, जैसे किसी विशेष ख़ानदान में पैदा होना, नस्ल भेद (सफेद, काले) का होना इत्यादि, तो इसकी वजह से किसी व्यक्ति को दूसरे पर वरीयता प्राप्त नहीं हो सकती, मनुष्य अपने कर्म व आचरण की वजह से श्रेष्ठ होता है, अर्थात् आप (सल्ल0) ने अपने अन्तिम सम्बोधन में फरमायाः

किसी अरबी को ग़ैर अरबी पर और ग़ैर अरबी को अरबी पर, अर्थात् गोरे को काले पर और किसी काले को गोरे पर (नस्ल व रंग की वजह से) कोई वरीयता (बड़ाई) हासिल नहीं है, हां तक़वा से फ़ज़ीलत हासिल होती है। (मुस्नद अहमद, हदीस न 23489)

दूसरा आधारभूत संकल्पना है कि समस्त मानव बहैसियत मानव सम्मान योग्य हैं। अर्थात पवित्र क़ुरआन कहता हैः

हमने इन्सान को आदरणीय (मोअज़्ज़िज़) बनाया है। (बनी इसराईलः 70)

हमने इन्सान को श्रेष्ठ कालिब (कृति) में पैदा किया।

(अत्तीनः 4)

आप (सल्ल0) के सामने से एक यहूदी का ज़नाज़ा गुजारा, आप (सल्ल0) इसके सम्मान में खड़े हो गये। (मुस्लिम, किताबुल जनाजा, हदीस न0: 941) औरतें अपने वालों को बड़ा दिखने के लिए अपने बाल के साथ दूसरों के बाल मिलाया करती थीं, ईश्वर के ईशदूत ने इस पर कठोर नापसंदीदगी का इज़हार फरमाया। (तिर्मिज़ी, किताबुल लिबास, हदीस न0 1759) क्योंकि मानव किसी चीज़ को दूसरा मानव अपने लिए प्रयोग करे, यह मनुष्य के आचरण एवं सम्मान के प्रतिकूल है।

ग़ैर मुस्लिम भाइयों के सम्बन्ध मेंः

पवित्र क़ुरआन ने जो इस बात पर ज़ोर (बल) दिया है कि ''समस्त मानव एक ही मां-बाप की सन्तान है'' इससे मानव सम्बन्धों के परस्पर रिश्ता स्पष्ट होता है, जैसे एक रिश्ता ख़ानदानी परस्पर भाईचारे का है, इसी तरह भाईचारे का एक व्यापक एवं विस्तृत रिश्ता है, जो सम्पूर्ण मानवता को एक लड़ी में पिरोता है, इस लिए मुसलमान हो या ग़ैर मुस्लिम, वह बहैसियत मानव भाई-भाई हैं, और ईश्वर ने इनके साथ सद्व्यवहार करने का आदेश दिया है।

जो लोग तुम से दीन के मामले में जंग नहीं करते और न उन्होंने तुम को तुम्हारे घरों से निकाले हैं, ईश्वर तुमको उनके साथ सद्व्यवहार करने और न्याय करने से नहीं रोकते, बेशक ईश्वर न्याय करने वालों को पसन्द करते हैं (अलमुमतहिनाः 8)

यह आयत इस बात की विवेचना करती है कि जो ग़ैरमुस्लिम मुसलमानों से मतभेद एवं दोष न रखते हों, उनके साथ अच्छा व्यवहार करना चाहिए, मुसलमानों के कुछ ग़ैरमुस्लिम रिश्तेदार मुसलमान होने को तैयार नहीं थे, मुसलमान रिश्तेदार पहले से उनके हालचाल एवं कुशलक्षम लिया करते थे, उन्होंने इस्लाम स्वीकार करने से इंकार की बुनियाद पर उनकी आर्थिक मदद करना छोड़ दिया, पवित्र क़ुरआन ने इस बात से मना किया कि वह किसी रिश्तेदार के मुसलमान न होने की वजह से उनके साथ सद्व्यवहार करना छोड़ दें, इस सम्बन्ध में यह आयत अवतरित हुईः

> उन लोगों की हिदायत आपके ज़िम्मे नहीं, ईश्वर जिसे चाहते हैं हिदायत देते हैं, और तुम जो कुछ माल ख़र्च करते हो, वह अपने ही लिए, और ख़र्च नहीं करते हो मगर ईश्वर की खुशनूदी की तलाश में, और जो भी ख़र्च करोगे तुमको पूरा-पूरा दिया जायेगा, (यानी इसका पूरा मूल्य मिलेगा) और तुम पर अत्याचार नहीं होगा। (अल बक़राः 272)

आप (सल्ल0) ने स्वयं अपने कर्म से इस सद्व्यवहार की मिसाल पेश फरमाई, मक्का के लोगों ने आप (सल्ल0) पर और आप के साथियों पर कितने अत्याचार किये, लेकिन जब मक्का में क़हत (भूखमरी) पड़ी, तो ईशदूत रसूल (सल्ल0) ने इनके लिए खाद्य पदार्थ एवं सेवा सामग्री जमा किया और पांच सौ दीनार उनकी मदद के लिए भेजे, (अल सैरुल कबीरः 9़61) बीस दीनार साढे सत्ताईस ग्राम सोना होता है, इससे अनुमान किया जा सकता है कि यह कितनी बड़ी रक़म थी, हालांकि मुसलमान स्वयं उस समय बहुत ही निर्धन एवं भूखमरी से गुज़र रहे थे।

आप (सल्ल0) ने ग़ैर मुस्लिम भाईयों के बारे में एक उसूली बात फरमाई कि जैसे हम अपने ख़ून को सम्मान योग्य समझते हैं, इसी तरह हमें इनके जीवन का भी सम्मान करना चाहिए, और जैसे हमारे माल की महत्ता (हुरमत) है इसी तरह इनका माल भी सम्मान योग्य है। (नस्बुल रायाः 3694)

क़ुरआन ने किसी भी माननव जीव के क़त्ल नाहक़ को हराम क़रार दिया है, (बनी इसराईलः 33) और एक इन्सान का क़त्ल को पूरी मानवता का क़त्ल कहा है (अल माईदाः 32) जो ग़ैर मुस्लिम भाई हमलावर न हों, बल्कि शान्तिपूर्वक मुसलमानों के साथ रहता हो, ईशदूत रसूल (सल्ल0) ने फरमाया कि जो व्यक्ति इसको क़त्ल करेगा वह जन्नत की ख़ुशबू से भी वंचित रहेगा। (बुख़ारी, हदीस नं0ः 30) या जो उनके माल में से ले लेगा, या उनके साथ अन्याय करेगा, क़यामत के दिन मैं उसकी तरफ से मददगार बनकर खड़ा रहूंगा। (अबू दाऊद, हदीस नं0ः 3053)

इसी तरह इस्लाम की नज़र में कोई मुसलमान बहन हो या ग़ैर मुस्लिम बहन, दोनों की इज़्ज़त व आबरू बराबर है।

इस्लाम ने ग़ैर मुस्लिम भाईयों के धार्मिक भावनाओं का ख़्याल रखने का आदेश दिया और कहा कि वह जिन देवी देवताओं को पूजते हैं तुम उनको बुरा भला न कहे, (अल ईनामः 108), पवित्र क़ुरआन ने किसी की इबादतगाह को गिराने की भर्त्सना की है, चाहे वह मुसलमानों की हो या किसी ग़ैर मुस्लिम गिरोह की, (अल हजः 40), क़ुरआन ने हिदायत दी कि जहां मामला न्याय का हों तो उनमें कोई भेदभाव नहीं होना चाहिए, अगर कोई गिरोह तुम्हारा विराधी हो, तुम्हारी नज़र में उनका तौर तरीक़ा अच्छा न हो, या उनकी सोच ग़लत हो, फिर भी तुम्हारे लिए यह बात उचित

नहीं है कि तुम उनके साथ अन्याय का मामला करो। (अल माईदाः 8)

महिलाएं और इस्लामः

इस्लाम का स्वभाव यह है कि समाज में जो जितना .ज्यादा कमज़ोर है वह उतना ही .ज्यादा ध्यान देने योग्य है। इसी लिए औरतों के सम्बन्ध में विशेषरूप से ध्यान देने का आदेश दिया गया है, औरतों को मनहूस समझा जाता था, पैगम्बरे इस्लाम रसूल (सल्ल0) ने इसको मना फरमाया, इस्लाम की दृष्टि में मनहूस सिर्फ इन्सान का कर्म होता है, वह कर्म जो गुनाह और अत्याचार पर आधारित हो, बाक़ी न कोई प्राणी मनहूस होती है न कोई इन्सान, न कोई समय और न कोई मकान, यह बात चली आ रही थी कि चूंकि जन्नत में हज़रत हव्वा अलैहिस्सलाम ने ईश्वर के आदेश की ख़िलाफ़वरज़ी (अवज्ञा) की, इस लिए औरत गुनाह का दरवाज़ा है, पवित्र क़ुरआन ने औरतों की दशा को स्पष्ट करते हुए कहा कि असल क़सूर शैतान का था, जिसने आदम व हव्वा दोनों को बहका दिया था। (अल बक़राः 36), लेकिन पुरूष होने की हैसियत से हज़रत आदम अलैहिस्सलाम पर .ज्यादा ज़िम्मेदारी होती है, इस लिए इस चूक के कारण हज़रत आदम अलैहिस्सालम की तरफ की गई। (ताहाः 121)

मूलभूत मानव अधिकार के विषय में पवित्र क़ुरआन ने स्पष्ट कर दिया कि इसमें पुरूष व स्त्री दोनों बराबर हैं।

जितना हक़ पुरूषों का है उतना ही स्त्रियों का है। (अल बक़राः 228)

स्त्रियों को अधिकार दिया गया कि वह स्वयं अपनी इच्छा से अपना निकाह कर सकती हैं। (अल बक़राः 232), उसे यह भी अधिकार दिया

गया कि अगर रिश्ते का निर्वाह में कठिनाई हो रही है, तो वह पति से अलाहदगी प्राप्त कर सकती है, विधवा और तलाक़शुदा औरतों के निकाह को प्रोत्साहन दिया गया। (अल नूरः 34), इसको बहुत सी ज़िम्मेदारियों से मुक्त रखा गया, अर्थात माता-पिता और बच्चों की भरणपोषण की ज़िम्मेदारी पुरूषों पर रखी गयी और औरत की आर्थिक ज़िम्मेदारी भी पिता और पति पर रखी गयी, ताकि वह किसी पर आश्रित न हो, इसको अपनी सम्पति में ख़र्च करने का पूरा-पूरा अधिकार दिया गया, न इसका पिता आज्ञा के बग़ैर इसके माल में ख़र्च कर सकता है न पति और न बेटा।

औरतो को पुरूषों से बढ़कर इज्जत दी गयी, आप (सल्ल0) ने बाप के बारे में फरमाया कि वह जन्नत का दरवाजा है। (तिर्मिज़ी, हदीस नं0ः 1900), और माता के बारे में कहा गया कि इसके क़दमों के नीचे जन्नत है। (सुनन नसाई, हदीस नं0ः 3104), पत्नी के बारे में कहा गया कि तुम में सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति वह है जिसके व्यवहार श्रेष्ठ हों, और सबसे श्रेष्ठ व्यवहार वाला वह है जिसका अपनी पत्नी के साथ आचरण अच्छा हो। (मिर्मिज़ी, हदीस नं0ः 3895), अर्थात पत्नी को घर की मालिकन क़रार दिया गया, आप (सल्ल0) ने फरमायाः औरत अपने पति के घर की इन्चार्ज है। (बुख़ारी, हदीस नं0ः 5200), आप (सल्ल0) ने बेटी के बारे में कहा कि जिस व्यक्ति की एक या दो बेटियां या इससे अधिक बेटियां हों और वह बेटों के मुक़ाबले में इसको कमतर समझे बग़ैर उसका पालन-पोषण करे, वह और मैं जन्नत में इस तरह होंगे जैसे यह दो उंगलियाँ। (तिर्मिज़ी, अबवाब अल बिर्र व सिला, हदीस नं0ः 1914), बेटों के पालन पोषण पर आप (सल्ल0) ने यह विशेषता बयान नहीं फरमाई, इस्लाम की इन शिक्षाओं का परिणाम था कि या तो इस्लाम से

पहले लोग बेटियों को ज़मीन में दफन कर देते थे, या फिर यह हुआ कि अगर कोई लड़की माता-पिता की संरक्षता से वंचित हो जाती तो कई लोग अपना मुक़दमा पेश करते कि हमें इसके पालन पोषण का अधिकार दिया जाये। पैगम्बर इस्लाम रसूल (सल्ल0) को औरतों का इस दर्जा लिहाज एवं सम्मान था कि देहान्त से पहले बिल्कुल अन्तिम समय में आप ने जो शिक्षाएं फरमाई इनमें एक यह भी कि औरतों के साथ अच्छा आचरण किया जाये। (मिर्मिज़ी, हदीस नं0ः 1163)

इबादत और इनका उद्देश्यः

इस्लाम में इबादत उन कर्मों और कर्त्तव्यों को कहते हैं जिनको मनुष्य ईश्वर से अपने सम्बन्धों को वर्णन करने के लिए करता है चुनान्चे चार इबादतों को इस्लाम में विशेष स्थान प्राप्त है, नमाज़, रोज़ा, हज, ज़कात। नमाज़ दिन व रात में पाँच बार पढ़ना आवश्यक है। साल में एक महीना रोज़े रखना ज़रूरी क़रार दिया गया है, वर्ष में एक बार ज़कात वाजिब क़रार दी गयी है जो विभिन्न मालों में .ढाई प्रतिशत से बीस प्रतिशत तक निकाली जाती है और निर्धनों पर ख़र्च की जाती है, हज जीवन में एक बार आवश्यक है, जिसके लिए पूरी दुनिया के मुसलमान मक्का में जमा होते हैं।

इन इबादतों में तीन बातों का .ख्याल रखा गया है।

(1) मनुष्य के अन्दर अपनी बन्दगी और ईश्वर की .गुलामी का एहसास बाक़ी रहे, वह समझे कि वह बड़ा नहीं है, ईश्वर की बड़ाई इसके मन में व्याप्त हो, इसी लिए नमाज़ में बार-बार 'अल्लाह अकबर' कहा जाता है कि ईश्वर ही सबसे बड़े हैं, बार-बार ईश्वर की प्रशंसा किया

जाता है, यह बात मानव को घमंड और बड़ाई के एहसास और दुसरों को नीच समझने से बाज़ (रोकती) रखती है।

(2) इन इबातों का दूसरा उद्देश्य मानव का प्रशिक्षण है, उदाहरण के तौर पर एक महीना प्रत्येक मुसलमान इस तरह रोज़ा (व्रत) रखता है कि मौसम कितना भी कठोर हो, वह भूखा प्यासा रहता है सुबह से शाम तक खाने का कोई लुक्मा और पानी का कोई क़तरा (बूंद) इसके हलक़ से नीचे नहीं जाता, हज करते हुए हफता दस दिन इसी तरह गुजारता है कि वह सिर्फ वह चादरें लपेटे हुए रहता है, न खुशबू लगाता है, न सौन्दर्य प्रसाधन की कोई और चीज़ प्रयोग करता है, इस तरह इन्सान में यह गुण पैदा होती है कि वह अपनी इछाओं को नियन्त्रण में रखे, क्योंकि दुनिया में सारे झगड़ों की जड़ यही है कि मनुष्य अनियन्त्रित हो जाता है और अपनी प्रत्येक इच्दाओं को पूरी करना चाहता है, चाहे उचित हो या अनुचित, और चाहे इसकी वजह से दुसरों के अधिकार को नुक़सान होता हो।

(3) तीसरा चरण यह है कि इबादतों के द्वारा समाज के निर्धन लोगों की परेशानियों का एहसास दिलाया जाता है, जैसे जब कोई व्यक्ति रोज़ा रखता है और स्वयं अपने अधिकार को भूख और प्यास को सहन करता है तो उस समय उसे अपने निर्धन भाईयों की परेशानियों और कठिनाईयों का एहसास होता है, इसी लिए रमजान के रोज़ों के साथ सदक़ा, फितरा आवश्यक क़रार दिया गया, जिसके द्वारा निर्धनों की मदद की जाती है प्रत्येक सम्पन्न व्यक्ति पर ज़कात की राशि निकालना आवश्यक कर दिया गया, जो निर्धनों पर खर्च की जाती है।

यही इस्लाम के इबादतों की आत्मा है, इस्लाम में दो त्यौहार हैं

एक ईद, दूसरे बक़रीद, मुसलमान इस दिन मैदान में निकल कर ईश्वर के सामने अपनी पेशानी झुका देते हैं न शोर होता है न हंगामा, न गाना न बजाना, बल्कि जबान पर सिर्फ ईश्वर का नाम होता है।

समाज का इस्लामी कल्पनाः

इस्लाम में समाजिक जीवन का एक सम्पूर्ण प्रबन्धन दिया है, माता-पिता और सन्तान, पति और पत्नी, भाई-बहन और रिश्तेदार, पड़ोस और मित्र के अधिकार निश्चित किये हैं। इन क़ानूनों का आधार दो बातों पर हैः इन्साफ और एहसान।

न्याय (इन्साफ) से आश्य यह है कि मनुष्य अपना अधिकार ले ले और दूसरों को इसका अधिकार दे दे, दूसरों के उनके अधिकार से वंचित करने या उनके अधिकार से कम देने की कोशिश न करे, पवित्र क़ुरआन में 90 बार न्याय का आदेश दिया गया, न्याय के मुक़ाबले में ज़ुल्म (अत्याचार) है, अत्याचार से आश्य है दूसरों को उनके अधिकार से वंचित कर देना, या उनको उनके अधिकार से कम देना है, पवित्र क़ुरआन में अत्याचार की जितनी भर्त्सना की गई है कम ही किसी और गुनाह की इससे .ज्यादा भर्त्सना की गई है, क़ुरआन ने कम से कम 86 बार अत्याचार की निन्दा की है, या इससे मना किया है। (सूरहः 40)

एहसान (उपकार) यह है कि मनुष्य अपने अधिकार से कम ले या अपना अधिकार छोड़ दे, दूसरों को उसके अधिकार से अधिक दे दे और समानता से काम ले, क़ुरआन ने कहा है कि ईश्वर उपकार करने वालों से प्रेम करता है। (आले इमरानः 134), पैग़म्बर इस्लाम रसूल (सल्ल0) का आचरण उपकार ही पर था, आप (सल्ल0) जब क़र्ज़ देने वाले का क़र्ज़

वापिस करते तो उसको बढ़ कर देते, दुश्मनों की गलतियों को क्षमा कर देते, मक्का में आप (सल्ल0) के दो घर थे, एक आपका नीजी (बाप-दाद) का घर, दूसरा आप की बीवी हज़रत ख़दीजा (रज़ि0) का घर, लेकिन मक्का विजय के अवसर से आप (सल्ल0) मक्का में प्रवेश हुए तो आप ने अपना घर वापिस नहीं लिया, बल्कि जो लोग उस पर क़ब्ज़ा किये हुए थे, उन्हीं के लिए छोड़ दिया, आप का पूरा जीवन इसी नियमों एवं परम्पराओं पर स्थापित थी और यही मुसलमानों के लिए जीवन व्यतीत करने का महान विधि हैं।

व्यवसाय के विषय में इस्लामी कल्पनाः

मानव की एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता व्यवसाय भी है, इस लिए अगर उचित सीमा में माल कमाने की कोशिश की जाये तो इसमें कोई बुराई नहीं है, पवित्र पुस्तक क़ुरआन ने उचित आय के लिए संघर्ष करने का आदेश दिया है। (अल जमीअतः 10), क़ुरआन ने धन को कल्याण के शब्द से सम्बोधित किया है। (अल आदियातः 8), जिका अर्थ ''बहुत अच्छी वस्तु'' के हैं, ईशदूत रसूल (सल्ल0) ने कहा आवश्यक नमाज़ के बाद सबसे बड़ा कर्त्तव्य शुद्ध (वैध) आय है। (सुनन अल कबीर, बैहक़ी, हदीस नं0ः 1695)

वैध व्यवसाय एवं आय के लिए आप (सल्ल0) ने कुछ सीमाए निश्चित कर दी हैं, इनमें से तीन बातें मुख्यरूप से महत्त्वपूर्ण हैं।

(1) अधिक से अधिक धन प्राप्त करने के लिए किसी का शोषण न किया जाये, जैसे एक ज़रूरतमंद व्यक्ति क़र्ज़ का इच्छुक हो और दूसरे व्यक्ति के पास पैसे हों, और वह उसकी मजबूरी का लाभ उठाता है, या एक व्यक्ति को तुरन्त किसी विशेष दवा की ज़रूरत हो जिसकी क़ीमत

बाज़ार में चार से पाँच सौ रुपय हो लेकिन यह देखते हुए कि दवा की और दुकानें बन्द हैं, और यह हम से दवा ख़रीदने पर मजबूर है इसकी क़ीमत चार से पाँच हज़ार प्राप्त किये जाएं, इसको इस्लामी क़ानून की परिभाषा में ''ग़बन फाहिश'' कहा जाता है, यह जायज़ नहीं है क्योंकि यह ग़रीबों का शोषण है।

(2) दूसरे इस्लाम का आर्थिक आय का प्रबन्धन धन की अधिक से अधिक बटवारे पर आधारित है, वह इस मत को पसन्द नहीं करता कि क़ौम की पूरी दैलत कुछ लोगों के हाथ में सीमित रह जाये। (अल हश्रः 8), इस लिए इस्लाम ने कहा कि कारोबार की बुनियाद ब्याज के बजाए भागीदारों ;च्तजदमतद्ध में लाभ के विभाजन पर हो। इसी तरह मीरास (बाप-दादाओं की सम्पति) का विभाजन का एक व्यापक प्रबन्धन निश्चित किया गया है, जिसके अन्तर्गत मनुष्य के मरने के बाद उसकी दौलत मां-बाप, पति-पत्नी, बेटों और बेटियों और अन्य दशाओं में दूसरे रिश्तेदारों के मध्य विभाजित हो जाती है।

(3) इस्लाम ने यह भी आदेश दिया है कि मनुष्य दौलत कमाने में सद्‌आचरण के व्यवहार से स्वतन्त्र न हो जाये, जैसे ईशदूत पैग़म्बरे इस्लाम ने इस बात से मना किया कि बाज़ार में किसी वस्तु की आवश्यकता हो और कुछ व्यापारी उसका भण्डारण अपने पास रोक लें, ताकि वह वस्तु महंगी हो जाये, क्योंकि यह मांग आचरण के विरुद्ध है कि मनुष्य स्वयं अधिक लाभ प्राप्त करने के लिए समाज को कठिनाई और तंगी में उलझा कर रख दे, इस्लाम के ईशदूत ने ऐसे कार्य करने वालों पर ईश का प्रकोप भेजा है। (सुनन इब्ने माजा, हदीस नं0ः 2153)

इसी तरह इस्लाम में इस बात की अनुमति नहीं है कि कोई

व्यक्ति शराब बेचे, या लड़ने झगड़ने वालों के हाथ हथियार बेचे, क्योंकि यह जनसाधरण को हानि पहुंचाने वाली वस्तुएं हैं, अर्थात आज पारिवारिक और ख़ानदानी जीवन में बहुत से कष्टदायक घटनाएं शराब के सेवन के कारण से पैदा होते हैं, और आज दुनिया में जो युद्ध हो रहे हैं, वह वास्तव में इन देशों की वजह हैं। जिनके उधोग धन्धों और व्यापार का सबसे बड़ा माध्यम हथियारों का बनाना और बेचना है।

पशुओं के साथ दयालुताः

इस्लाम ने जिस तरह मनुष्यों के साथ सद्व्यवहार का आदेश दिया है उसी तरह पशुओं के साथ भी अच्छे व्यवहार एवं आचरण का आदेश दिया है, इस्लाम ने पशुओं से सही तरीक़े पर लाभ उठाने की अनुमति दी है, पशु के मुंह पर मारने से मना किया गया है। (मुस्लिम किताबुल लिबास, हदीस नं0ः 2116), लोग पशुओं को परस्पर लड़ाते और उसका तमाशा प्रदर्शन देखते थे ईशदूत ने इस दरिंदगी से मना किया। (तिर्मिज़ी, किताबुल जिहाद, हदीस नं0ः 2564)

पैग़म्बरे इस्लाम ईशदूत ने पशुओं को स्टेज के तौरर प्रयोग करने से भी मना किया है। (मुस्नद अहमद, हदीस नं0ः 15667)

> ईशदूत रसूल (सल्ल0) का कथन हैः
> प्रलय (क़यामत) के दिन एक औरत सिर्फ इस लिए दोज़ख़ (नरक) में डाली जायेगी कि उसने एक बिल्ली को बांध रखा था, उसे इसका अवसर नहीं दिया गया कि वह स्वयं खाये और चलकर अपनी ज़रूरत पूरी करे। (बुख़ारी, हदीस नं0ः 2365), और एक व्यक्ति इस कारण स्वर्ग में

प्रवेश किया जायेगा कि उसने एक प्यासे कुत्ते की प्यास दूर की होगी और उसे पानी पिलाया होगा। (बुख़ारी, हदीस नं0: 2363)

आप (सल्ल0)ने कहा कि इन्सान की लगाई हुई खेतियों में से चौपाए, पक्षी जो खा लें, उस पर भी सदक़े का सवाब है। (बुख़ारी, हदीस नं0: 2320), इस्लाम में गोश्त खाने की अनुमति ज़रूरी है, लेकिन अकारण पशुओं को मारने के दर पर होना उचित नहीं है, किसी साहब ने एक गौरैया की तरह का पंक्षी पकड़ रखा था और उसकी माँ बेचैन थी, आप (सल्ल0) ने इस पर नाराज़गी जताई। (अबु दाऊद, किताबुल जिहाद, हदीस नं0: 6277)

ईशदूत रसूल (सल्ल0) ने कहा कि बिला ज़रूरत इसको ज़िब्ह करने पर भी जवाब देना होगा। (नसाई, किताबस्सैद, हदीस नं0: 4369), इसीलिए जो वस्तुए मनुष्य के काम नहीं आतीं, आप (सल्ल0) ने उनको मारने से मना किया है, चूँटी, शहद की मक्खी और हुद हुद इत्यादि के मारने की आप (सल्ल0) ने सर्शत मना किया है। (अबू दाऊद, किताबुल आदाब, हदीस नं0: 5267), किसी जीव-प्राणी को ईशदूत मुहम्मद (सल्ल0) ने कठोरतका से रोका है। एक बार लोगों ने ऐसी जगह चूल्हा सुलगाया जहां चिटियाों के बिल थे, आप (सल्ल0) ने चूल्हा बुझाने का आदेश दिया। (मुस्नद अहमद, हदीस नं0: 3763)

इस्लाम का मानना है और उसकी आस्था है कि ईश्वर को एक मानें और उसके नियमों और कर्त्तव्यों को स्वीकार करने में दुनिया की भी भलाई और आख़िरत की भी मुक्ति है, और मुसलमानों की एक ज़िम्मेदारी यह भी है कि वह अपने लिए जो पसन्द करे, वहीं दूसरों के लिए भी

पसन्द करे, इस लिए वह इस बात को ज़रूर समझता है कि दूसरे मानव भाईयों के सामने सफलता एवं मुक्ति के इस मार्ग को प्रस्तुत करे और उन्हें इस्लाम की तरफ आने की दावत दे, लेकिन किसी मुसलमान के लिए चाहे वह शासक हो या देश का सामान्य शहरी, और चाहे मुस्लिम बहुसंख्यक देश हो या मुस्लिम अल्पसंख्यक देश, इस बात की गुंजाईश नहीं है कि वह दबाव या ज़ोर ज़बरदस्ती दूसरे का धर्म परिवर्तित कराए और उसे मुसलमान बानए, पवित्र पुस्तक क़ुरआन ने सपष्ट घोषणा कर दिया हैः

لا اکراہ فی الدین

दीन में कोई ज़ब्र और ज़बरदस्ती नहीं है। (अल बक़राः 256)

ईशदूत रसूल (सल्ल0) ने स्वाभाविक रूप से इस बात के लिए बेचैन और परेशान रहते थे कि मक्का के लोग इस्लाम स्वीकार कर लें, ईश्वर ने आप (सल्ल0) को सम्बोधित करते हुए कहाः

क्या आप लोगों को इस बात पर मजबूर कर दोगे कि
वह मुसलमान हो जायें। (यूनुसः 99)

इसीलिए इस्लाम की जो कुछ प्रसार हुआ है वह प्रेम और सद्आचरण के माध्यम और इस्लामी शिक्षाओं के आकर्षण के कारण से हुई है, आप (सल्ल0) ने तेरह वर्ष मक्का में दावत दी, उस समय मुसलमान इस दशा में थे कि वह खुले आम नमाज भी नहीं पढ़ सकते थे, मुसलमान सार्वजनिक रूप से पवित्र कुरआन को पढ़ नहीं सकते थे, इन्हें मजबूर हो कर दो बार मक्का छोड़कर हब्शा जाना पड़ा और फिर अपने घर-बार से वंचित होकर मदीना आना पड़ा, इस तेरह वर्ष के जीवन में शहर मक्का के कई सम्मानित गणमान्य व्यक्तियों ने इस्लाम स्वीकार

किया, जैसे हज़रत अबू बक़र रज़ि0, हज़रत उस्मान रज़ि0, हज़रत हम्ज़ा रज़ि0 ने इस्लाम स्वीकार किया, क्या यहां जोर जबरदस्ती या दबाव से लोगों को मुसलमान बनाया जा सकता था?

मदीना के लोगों ने स्वयं शहर मक्का पहूँच कर और मक्का के लोगों से छिप-छिपाकर इस्लाम क़बूल किया, फिर उनकी दावत पर मुसलमान शहर मदीना आये, उस समय उनके पास न रहने को घर था न कमाने के लिए कोई व्यवसाय, क्या यह दूसरों को ज़ोर ज़बरदस्ती से मुसलमान बना सकते थे, शहर मदीना में यहूदियों के तीन क़बीले थे, यह तीनों अन्त तक यहूदियत पर क़ायम रहे, अगर आप चाहते तो मुसलमानों की अधिकता का सहारा लेकर उन पर ज़ोर ज़बरदस्ती कर सकते थे, लेकिन आप ने कभी ऐसा नहीं किया और उनमें से कुछ ही लोग थे जो मुसलमान हुए।

फिर विश्व के मानचित्त पर दृष्टि डालकर देखें तो स्पेन में आठ सौ साल मुसलमानों का शासन रहा, लेकिन फिर भी वह ईसाई बहुसंख्यक देश रहा, इण्डोनेशिया मुसलमानों का सबसे बडा देश है, इसी तरह मलेशिया एक बडा मुस्लिम बहुसंख्यक देश है, अफ्रीक़ा के पूर्वी किनारे पर अधिकतर मुस्लिम देश हैं, यह सब वह क्षेत्र हैं, जहां कभी मुसलमानों की फ़ौज प्रवेश नहीं हुई बल्कि मुसलमान नाविकों एवं व्यापारियों की दावत पर और उनके जीवन को देखकर वहां के लोगों ने अपने तौर पर इस्लाम स्वीकार किया, इसी तरह हिन्दुस्तान में विभिन्न मुसलमान ख़ानदानों लग-भग एक हज़ार साल तक शासन किया, और कुछ छोटी रियासतों को शामिल कर लिया जाये तो सन् 1947 ई0 में हिन्दुस्तान के साथ ज़म होने तक लगभग बारह सौ वर्ष उनका शासन का काल रहा है, और मुसलमान

ज़ोर ज़बरदस्ती से लोगों को इस्लाम क़ुबूल कराते तो यक़ीनन वह आज अल्पसंख्यक में न होते, इसका कारण यही है कि मुसलमानों को स्वयं उनके धर्म ने इस बात से मना किया है कि धर्म के मामले में दबाव या ज़बरदस्ती से काम लिया जाये, अर्थात वह हमेशा अपने धर्म की इस शिक्षा पर क़ायम रहे, और प्रेम के साथ लोगों के सामने इस्लाम की शिक्षा प्रस्तुत कीं।

☆☆☆